Chap-6

श्री गणेशाय नमः

षष्ठ अध्याय
राजस्थानी एवं गुजराती लोकगीतों के लोकवाद्य यंत्र

राजस्थानी लोक वाद्ययंत्र

राजस्थान प्रदेश की महानता और विविधता के अनुरुप ही यहाँ की ललित कलाएं भी महान हैं। राजस्थानी लोकसाहित्य का संगीत व नृत्य से धनिष्ठ संबंध रहा है। भारतीय संस्कृति का एक श्रीसंपन्न केन्द्र होने से राजस्थान में भी संगीत का विकास हुआ । लोकगीत लोकसंगीत और लोकवाद्य परस्पर एक दूसरे से जुड़े हुए है व आपसी पूरक भी है। लोकसंगीत का प्रभाव लोकगीत से ही पड़ सकता है और लोकगीत बिना संगीत और वाद्य के अधूरा है, अपूर्ण है। लोकसंगीत ने लोकगीत के प्राण को बनाए रखा और लोकवाद्यों के उपयोग ने इन गीतों में चार चाँद लगा दिए।

अब हम राजस्थानी लोकवाद्यों का स्वतंत्र रुप से अध्ययन करेंगे।

वाद्य साढे तीन प्रकार के होते हैं।

(१) तार वाद्य (२) फूँक वाद्य (३) खाल वाद्य और आधे में ताल वाद्य माने गये है।

१. **तार वाद्य :** जो वाद्य तार से बजते हैं वे तार वाद्य, जैसे अपंग, इकतारा, सारंगी, तन्दूरा आदि। अब हम प्रत्येक वाद्य का स्वतंत्र अध्ययन करेंगे।

सारंगी : यह तुन, सागवान, कैर और रोहीड़ा वृक्ष की बनती है। लोकवाद्यों में इसका छोटा रुप होता है । किसी किसी के माथे में खूँटियाँ होती है किसी किसी में नहीं। ऊपर की ताँते बकरे की आंतो की बनी हुई होती है। इसमें तेरह तुरपे होती है जो सब स्टील की बनी हुई होती है। ताँतो को चार बड़े खूँटो से बाँध दिया जाता है । ऊपर तुरपों को खूँटियों से बाँध दिया जाता है। सारंगी को गज से बजाया जाता है। गज के घोडे के बल बँधे हुए रहते हैं। गज को वेरजे से घिसा जाता है। लोक गायक सारंगी बजाते हुए उसके साथ गाते हैं जबकि शास्त्रीय संगीत मे गायक का यह संगत करती है। जैसलमेर की ओर इसे लंगे बजाते हैं। मेवाड़ में धनगरों के भाट इसे बजाते हैं। इन गाँवों के नगारची लोग भी इसे बजाते है। देवी देवताओं के मंदिरों में यह बजाई जाती है।

रेगिस्तानी भागों में जोगी भी सारंगी पर सुलतान निहालदे, गोपीचंद, भरथरी, शिवजी का ब्यावला गाकर सुनाते हैं। गडरियों के भाट इसे मेवाड़ की ओर बहुत अच्छी बजाते है।

जंतर : इसमें ५-६ तार होते हैं। अंदर तुरपें नहीं होती बदनरो के तथा सवाई भोज के भोपे इसे बजाते है। वह वीणा की तरह का होता है। इसे गले में पहन कर खड़े-खड़े बजाया जाता है। बगड़ावतों की कथा में यह प्रयुक्त होता है।

रवाज : यह सारंगी की तरह होता है। इसमें गज काम में नहीं लाई जाती। इसमें भी ताँते होती हैं और थर का

तार सन की रस्सी का होता है। वह नखों से बजाया जाता है। इसमें ८ तुरपें होती हैं। इसमें कुल १२ तार होते हैं।

रावणहत्था : बड़े आधेनारियल की कटोरी पर खाल के खूँटियाँ लगा दी जाती है। इसमें भी सात आठ तुरपें होती है। इसके बजाने का ढंग बेले की तरह का होता है। यह सीने से लगाकर बजाया जाता है। यह ऊँगलियों के बीच के हिस्से से बजता है।इसकी गज धनुष की तरह की होती है। यह घोड़े के बालों से बँधी हुई होती है। इसके घुँघरु बँधे हुए होते हैं। रावणहत्था पाबूजी के भोपे और डूँगजी जँवारजी के भोपे बजाते हैं। पाबूजी के भोपों का रावणहत्था अपेक्षाकृत सुरीला होता है।

तम्बूरा : इसको निशान भी कहते हैं। गाँव के लोग इसे वेणों और कहीं कहीं चौतारा भी कहलाता है। इसके चार तार होते हैं। इसकी शक्ल सितार या तानपूरे से मिलती जुलती है। इसकी कुंडी सारी लकड़ी की बनी होती है। इसे बजानेवाला बॉए हाथ से पकड़े रहता है और दाहिने हाथ से एक उँगली से बजाता है। इसके साथ करताल, मंजीरे, चिमटा आदि वाद्य बजाते है। इस वाद्य को अकसर कामड़ बजाते हैं। रामदेवजी के भजन इस पर बोले जाते हैं। निर्गुण भजन बोलने वाले नाथ पंथी लोग इसी वाद्य को काम में लेते हैं।

अपंग : पहले यह लम्बे आल के तुम्बे का बनता था अब लोहे का भी बना लेते हैं। डेढ़ बालिश्त लम्बे और दस अंगुल चौड़े तुम्बे का यह बनता है। इसके चार बालिश्त को लकडी, तीन अंगुल चौड़ी, तुम्बे में खडी लगा दी जाती है। आल का नीचे का हिस्सा खाल से मंढ़ दिया जाता है। ऊपर का खाली छोड़ दिया जाता है। यह पीपे के समान होता है। यह खूँटी के सहारे बजाता है। इसी एकाधार पर ताल बजती है। खूँटी को ढीली करते और तानते हुए इसे बजाते हैं।

इकतारा : यह भी बहुत पुराना वाद्य है। नारदजी से इसका संबंध जोडा जाता है। यह आदि वाद्य है। एक छोटे गोल तुम्बे को लेकर उसमें बाँस फँसा दिया जाता है। थोड़ा सा हिस्सा काटकर बकरे के चमड़े से उसे मढ़ देते हैं। बाँस के नीचे एक तार बाँध दिया जाता है, जिसे उपर लगी हुई खूँटी से कस देते हैं। तार पर ऊँगली से ऊपर नीचे चोट करते हुए इसे बजाते है। बाँस का नीचे का भाग भारी और ऊपर का हलका होता है। इकतारा एक हाथ में ही पकड कर बजाया जाता है। दूसरे हाथ में करताल रखतेहैं। इसको नाथ, काल बेलिये आदि बनाते हैं। सबद भी इसी पर बोलते है। यह सस्ता वाद्य है। साधु, सन्यासी, इसको प्रायः रखते है।

(२) **फूँक वाद्य :** जो फूँक से बजते है वे फूँक वाद्य कहलाते हैं, जैसे बाँसुरी, पूंगी, अळगोजा आदि।

अळगोजो : यह एक प्रारंभिक वाद्य है, आनन्दाभिव्यक्ति के समय मुँह से सीटियाँ बजाने का विकसित रुप है। मुँह से सीटियाँ नहीं बजा कर धीरे धीरे बाँसो में छेद करके उनसे आवाज निकालने की प्रथा चल पडी। यह सात सुरों वाली आड़ी और खड़ी बाँसुरी से भिन्न है। कई अळगोजे तीन छेद वाले

भीहोते है और कई पॉच छेद वाले भी होते हैं। आदिवासियों तथा ग्रामीणो में इस वाद्य का विशेष प्रचार है क्योंकि उनके गीतों की चलत-फिरत तीन चार स्वरो में ही होती है, इस कारण अळगोजा उनके लिए उपयुक्त है।

किसी भी बाँस की नली में लोहे की गरम सिलाख से छेद कर दिये जाते है। बाँस की नली के ऊपर के मुँह को छीलकर एक लकड़ी का गट्टा चिपका देने पर आसानी से उसमें से आवाज निकाली जा सकती है। प्रायः दो अळगोजे एक हाथ मुँह में रखकर बजाये जाते हैं। दोनों साथ बजने से बडे मधुर मालूम होते हैं। यह खड़ा बनता है। एक से तो केवल सा बजता रहता है दूसरे से स्वर निकाले जाते हैं। इसको काळबेलिये भी बजाते है। नकसाँसी से बजता है।

शहनाई : यह बड़ी चिलम के आकार की होती है सबसे अच्छी बनारस में बजती है। इसमें आठ छेद होते है। इसका पत्ता ताड़ के पत्ते का होता है। इसकी आवाज बड़ी तीखी और मीठी होती है। यह बहुत दूर तक सुनाई दे जाती है। इसको नगारची खासकर बजाते है। इसका जोड़ा नगाड़े का है। शादी के अवसर पर भी बजाई जाती है। राजाओं महाराजओं के यहाँ प्रतिदिन बजा करती थी। इसकी धुन फूँक के ऊपर ही निर्भर है। यह पुराना वाद्य है।

पूँगी : यह छोटी लौकी, घिया अथवा तुम्बे की बनी होती है। उसका पतला भाग (मुँह) लगभग डेढ़ बालिश्त लंबा होता है। तुम्बी के नीचे का हिस्सा गोल आकार का होता है। उसके नीचे के हिस्से में थोड़ा सा छेद कर दिया जाता है। फिर दो पतले बाँस की दोपोरी अर्थात् दो भूँगलियाँ ली जाती है। उन भूँगलियों में से एक के तीन छेद बना देते है और एक के नौ छेद कर देते हैं। फिर उन दोनों को चिपका देते हैं। नल बाँस लेकर दो पात बना लिए जाते हैं, वे दोनों पात उन भूँगलियों के मुँह में बैठा दिए जाते है। इनसे आवाज पैदा होती है। फिर उन दोनों जुड़ी हुई भूँगलियों को नल बाँस सहित उस तुम्बी के छेद में मोम की सहायता से जमा दिया जाता है। यह भी नकसॉसी से बजती है। उसमें एक अचल स्वर सा के रुप में बजता है। इस वाद्य को ज्यादातर काळबेलिये बजाते है। इसमें सॉप को मोहित करने की अद्‌भुत शक्ति होती है। नाग इसको सुनकर वश में हो जाता है।

बाँसुरी : इसे शास्त्रीय वादक भी बजाते है और लोक वादक भी। ये अपने अपने तरीके से इसे बजाते है। यह बाँस की बनी हुई होती है। जिसमे सात स्वर होते हैं। यह आड़ी बजती है। यह सामुदायिक वाद्य भी है। यह कमखर्चीला वाद्य है। जिसके स्वर बड़े मधुर होते हैं। भगवान श्रीकृष्ण और बाँसुरी अभिन्न रुप से जुडे है। यह संगत करने वाला वाद्य है। वैसे लोक में इसको स्वतंत्र रुप से मनोरंजन के लिए भी बजाते हैं।

मशक वाद्य : यह रेगिस्तानी भागों में अधिकतर देखा जाता है। यह आधुनिक बीन जो बैंड का साज है, (बैग पाइप) उससे मिलता जुलता है। चमड़े की मशक में हवा भरी जाती है और मुँह से बजाने वाला एक ओर उसमें हवा भरता रहता है और दूसरी ओर दोनों हाथों की उंगलियों की सहायता से स्वर निकालता रहता है। इसमें भैंरुजी के भोपे विशेषकर बजाते है। यह भी नकसाँसी की सहायता से बजता है।

बाँकिया : यह पीतल का बना होता है। ज्यादातर यह मेरठ में बनता है और त्रांफोन की शक्ल का होता है। इसकी लंबाई १ ।। हाथ के लगभग होती है। इससे तूहड तूहड की आवाज होती है। शादी विवाह के अक्सर पर यह बजाया जाता है। शादी विवाह के अवसर पर यह बजाया जाता है। यह सरगड़ों का खानदानी वाद्य है और ढोल के साथ बजता है।

शंख : यह एक समुद्री जीव है जो समुद्र में पैदा होता है। इसकी आवाज बडी गम्भीर होती है और बहुत दूर दूर तक सुनाई पडती है। इसे जमात वाले नाथ साधु बजाते हैं। मंदिरों में अक्सर प्रातः काल और सायंकाल आरती में बजाया जाता है। भैंरु और माताजी के मंदिरों में विशेषतः मेवाड में बजाया जाता है। इसके साथ झालर, घड़ियाल, गरुड़ घंटी, नौबत भी बजती है। यह शव के साथ भी बजाया जाता है। महाभारत में युद्ध प्रारंभ होने से पूर्व इसके बजाने का उल्लेख है। यह हृदय दहला देने वाला वाद्य है।

सिंगी : यह बलदार सींग का बना हुआ होता है। इसको प्रायः साधु, भगवान का स्मरण करने के बाद बजाते है।

भूँगळ : यह भवाइयों का वाद्य है। खेल शुरु करने से पहले गाँव मेंभवाई इसे बजाते हैं तब जनता एकत्रित होती है। यह पीतल की बनी हुई होती है। लगभग तीन हाथ लंबी होती है। यह भी रण वाद्य रहा है। लगभग तीन हाथ लंबी होती है। यह भी रण वाद्यरहा है। इसकी आवाज कुछ कुछ बांकिये से मिलती है।

(३) **खाल वाद्य :** जो वाद्य खाल के बने होते हैं वे खाल वाद्यों के क्षेत्र में आते है जैसे नक्कारा, ढोलक, ढोल, ताशा आदि।

मटकी : मटकी वादन में भी मटकियों के चुनाव में बहुत बुद्धिमानी की आवश्यकता है। जितनी ही अधिक पकी हुई और मजबूत मटकी होगी उतनी ही उससे मधुर और झनकारवाली आवाज निकलेगी। पत्थर की तरह मटकी बजाना आसाम नहीं। मटकी बजाने के लिए तबला / ढोलक का ज्ञान आवश्यक होता है। मटके का पेट तो, दाहिने हाथ से बजाये जाने वाले तबले का काम देता है और मुँह पर हथेली से थाप मारने से मटके के गर्भ से गंभीर आवाज निकलती है। राजस्थान में इसके बजाने की प्रथा है। यह बहुधा लोकवाद्यों के रुप में ही विद्यमान है। कुछ लोग अपने हाथ में घुंघरुं बंध कर भी मटकी बजाते हैं। कहीं कहीं मटकी सत्संग तथा भक्तजनों के बीच में प्रचलित है। इकतारा, मजीरा, खड़ताल तथा मटकी मिल प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

मटकी पर बकरी का चमडा (खाल) मढ़ा जाता है।

ताशा : यह अरब देश का वाद्य होने से यह अरबी ताशा कहलाया। इसका प्रयोग राजस्थान के दक्षिणी पश्चिमी भागों में अधिक होता है। रेगीस्तानी भागों में भी यह काम में लाया जाता है। यह चपटी परातकी तरह होता है और इसके ऊपर बकरे का पतला चमड़ा मढ़ा रहता है। इस वाद्य कोदो पतली बाँसपटियों में

बजाया जाता है। ताशा बजानेवाला पतली रस्सियों से इसे बांधकर फिर अपने गले में इसे बांध लेता है। इससे तड़बड तडबड़ की आवाज निकलती है। केवल विवाह शादियों के जुलूसों में यह काम आता है। यह कर्णकटु और सुननेवालों को चौकन्ना कर देता है। यह भी रणवाद्य था। शेखावाटी की और कच्छी घोड़ी नाच में भी ताशा बजाते हैं। इसे रेगिस्तानी भागों में केवल मुसलमान ही बजाते हैं।

नौबत : यह भैंसे की खाल की मँढी जाती है। पूरे पाडे की खाल ही इसके लिये पर्याप्त होती है। इसकी कुंडी सर्व धातु की बनी होती है। यह चमड़े की रस्सी से गूँथी जाती है अर्थात् कसी जाती है। यह चूडिया उतार होती है। बबूल या सीसम की चोब (डंको) से यह बनती है। बजानेवाले के दोनों हाथों में चोब रहती है। इसकी आवाज में गंभीरता रहती है। इसका उपयोग बडे मंदिरो में होता है। राजा महाराजाओं के यहाँ अक्सर सुबह, शाम यह बजा करती थी।

नकाड़ा : इसको नगारा, नगाड़ा और नक्कारा भी कहते हैं। इस पर पाडे (भैंस) की खाल ही मढ़ी जाती है। इसके साथ इसी की शक्ल की नकाड़ी होती है जिसका इसके साथ जोडा है। इसकी बजाई बहुत सुंदर लगती है। राजस्थान में राम लीलाओं, ख्यालों, शेखावाटी और कुचामनी में ये बजाये जाते हैं। नोटंकी के ख्यालों में प्रायः बजता है। भैंरुजी और माताजी के मंदिरों में केवल नगाड़ा ही बजता है। ढोली लोग नगाड़े बनाने के कारण ही नगारची कहलाये। ये इस काम में बड़े प्रवीण होते है। शेखावाटी में राणा, मिरासी भी इन्हें बजाते हैं। मेवाड़ में नाथद्वारे का नगाड़ा बड़ा नामी है।

धौंसा : यह नगाडे जैसा होता है जो घोड़े पर दोनों ओर रखा जाता है। यह युद्ध का वाद्य था। जो एकसाथ नहीं बजता। एक बार कडंघा की आवाज कर दी जाती है फिर थमा दिया जाता है। थोड़ी देर ठहर फिर से बजाते है। शेखावाटी में विवाह के ढुकावों में अब भी कभी-कभी यह देखा जाता है।

ढोल : यह लोहे की गोल चद्दर पर दोनों ओर से मढ़ा जाता है। इस पर बकरे की खाल चढ़ती है। सूत की रस्सी या सन की रस्सी से इसे कसा जाता है। इसकी आवाज गंभीर होती है। यह एक मांगलिक वाद्य है। बहुत से स्थानों में हर त्यौहार और हर घर में बजता है। अधिकत्तर घर की स्त्रियॉ मेवाड की ओर शादी और गणगौर के अवसर पर इस पर नाचती हैं। राजस्थान मैं यह बारह प्रकार से बजाया जाता है यथा एहडे का ढोल, गेर का ढोल, नाचने का ढोल, झोटी ताल, वारु ढोल, घोड़ चढ़ी का ढोल, बारात चढी का ढोल, आरती का ढोल आदि। इसको बजाने के लिए दो आदमियों की जरुरत पड़ती है। यह वाद्य देवी देवताओं के मंदिरों और गाँवों में भी पाया जाता है। राजस्थान के कई लोक नृत्यों में यह बजाया जाता है जैसे जालोर का ढोल, भीलों का गेर नृत्य और शेखावाटी का कच्छी घोड़ी नृत्य। ढोल का जोडा थाळी, बांकिया है।

मादळ : यह गारे (मिट्टी) की बनी होती है। भोलेला (नाथद्वारा के पास) में बहुत अच्छी बनती है। यह पुराना लोकवाद्य है। इसको शिव गौरी का वाद्य मानते है। मान्यता के अनुसार मृदंग इसका विकसित रुप है। ऊपर की खाल को गोलाकार कर लिया जाता है। यह सूत या सन की रस्सी से खाल को छेदते हुए मढ़ी

जाती है। मादळ प्रायः गौरी नृत्य में बजाई है। भील लोग इसको बजाते हैं। पेशेवर जातियों में ढाँगियों के भाट इसको बजाते हैं। भीलों की शादी में तथा ग्रामीण देवी देवताओं के मंदिरो में इसे बजाया जाता है।

HANSA MEHTA LIBRARY
The M.S. University of Baroda

मृदंग : बीया, सवन, सुपारी और बड़ला (बड़) पेडों की बनती है। इसकी पूड़ी तबले की माफिक होती है। इस पर बकरे की खाल चढ़ती है। यह वाद्य रावळ और राबिया जाति नाच में काम में लेती है। इसकी आवाज बडी मधुर होती है। ग्रामीण लोग अपने ढंग से बजाते हैं। रावळो और राबिये की बजाने की शैली अलग रहती है। ये लोग झाँझ को इसके साथ काम में लेते हैं।

ढोलक : यह भी उक्त वृक्षों की ही बनती है। इसकी मँढ़ाई ढ़ोल की तरह होती है। इसकी खाल बकरे की होती है। ढोलक को नगारची, साँसी, कंजर, ढाढी, मिरासी, कव्वाल, भवाई, रामलीला वाले, वैरागी साधु आदि बजाते हैं। तुर्राकलंगी आदि ख्यालों में भी यह बजती है। नट भी इसको बजाते हैं। इसके साथ बड़ा मँजीरा बजता है। वैसे यह खुला वाद्य है। ढोलक के कई प्रकार राजस्थान में देखे जाते हैं। ढोलनियाँ और पातरनियाँ जो ढोलक बजाती हैं वह छोटी और बहुत मधुर होती हैं। सिरासिनियाँ जो ढोलक बजाती हैं वह कुछ बडी होती है। नटों के लिए ढोलक अविच्छिन्न है, उनका यह बड़ा आवश्यक साज है। कठपुतली नट भी इसको काम में लाते हैं। ढोलक बजाने में भवाई बड़े कुशल हैं और उनका मुकाबला लोक पेशेवर वादकों में अन्य बहुत कम ही कर सकते हैं।

चंग : इसका गोल घेरा लकड़ी का बना होता है। यह कम से कम तीन बालिश्त चौड़ा होता है। एक ही ओर से यह बकरे की खाल से मँढ़ा जाता है। जौ के आटे की ल्याई (लेही) बना कर घेरे के लगा देते हैं और उसके उत्तर फिर खाल चिपका देते हैं। फिर उसे छाया में सुखा कर काम में लेते है। इसको कंधे पर रखकर बाँये हाथ से बजाते हैं। इस वाद्य को काळबेलिये बजाते हैं। होली के दिनों में हरेक जाति के लोग प्रायः इसे बजाते हैं। इस पर धमालें और चलत के गीत बजते हैं। ख्यालों में तुर्राकलंगी वाले इसको बजाते हैं। इसको ढप भी कहते हैं। इसका छोटा रुप डफड़ा होता है। चमारों के ढोली अधिकतर दफड़ा बजाते हैं। चंग राजस्थान का लोकप्रिय वाद्य है। इसी से संबंधित कुछ गीतों की पंक्तियाँ–

(१) ढप कोह को बजावो जी बालम रसिया ढप काहे को।
(२) रंगीलो चंग बाजैगो।
(३) थारो ढप बाजै म्हारो इन्दरगढ़ हालै
सूती नार चिमक जागै रे, हबक जागै।

डैंरु : इसको ढाक भी कहते हैं। यह आम की लकडी का बनता है। यह डमरु का बड़ा रुप है। बजने में इसकी अलग ही विशेषता है। डैंरु एक छोटी लकड़ी से बजाया जाता है। इसके दोनों ओर के सिरे बराबर होते हैं जो चमडे से मँढ़े हुए होते हैं। इसके साथ छोटी थाळी या काँसी का कचोळा (कटोरा) बजता है। मेवाड में भील लोग इसे बजाते हैं। गोगाजी के भोपे, चमार भी रेगिस्तानी भागों में इसे बजाते हैं अन्य भोपे भी इसे बजाते हैं और इस पर भारत गीत गाते हैं।

खंजरी : यह आम की बनी हुई होती है। इसको भी चंग की तरह एक ही तरफ से मँढ़ते है। इसे दाहिने हाथ से पकडकर बाँये हाथ से बजाते हैं। निर्गुणी भजन वाले लोग इसे बजाते है। जैसे कामड़, आदिनाथ, बळाई, भील आदि। ऐसी ही अन्य जातियाँ इसको बजाती है। काळबेलिये भी इसे बजाते हैं।

डमरु : डमरु का संबंध भगवान शिव से है और इस द्रष्टिसे यह बहुत पुराना वाद्य है। डमरु में दो रस्सी गाँठें वाली होती हैं। बीच में इसे पकड़ कर हिलाने से गाँठ जब चमड़े पर पडती है तब आवाज होती है। इसे अधिकतर मदारी लोग बजाते है। इसके साथ बाँसुरी भी बजाते हैं। डमरुं लकड़ी व मिट्टी दोनो ही से बनते हैं। इसे बजाने में किसी कौशल की आवश्यकता नहीं। मदारी लोग आमतौर से काठ के डमरु का प्रयोग करते है।

ताल वाद्य : आधे ताल के वाद्यों में समय, लय या स्वर नहीं होता, उनके द्वारा केवल छन छन या टन टन की आवाज होती है।

मंजीरा : यह पीतल और काँसी की मिली हुई धातु का बना होता है। दो मंजीरों को आपस में टकराया जाता है । यह निर्गुणी भजनों के साथ, तम्बूरे, तन्दूरे, इकतारे के साथ बजता है। ढप के साथ ढोल के साथ भी बजता है। यह बहुत ही लोकप्रिय और सस्ता वाद्य है। इसकी ध्वनि बडी मधुर होती है। भजनो के साथ तथा होली के गीतों में भी यह बजाया जाता है।

थाली : यह काँसी की बनी हुई होती है। इसका एक तरफ से किनारा छेद दिया जाता है। इसमें रस्सी या तार बाँध कर अँगूठे में लटका लेते हैं। यह लकड़ी के डंके से बजती है। इसका प्रयोग मादळ, ढफ, ढोल, चंग आदि वाद्यों के साथ होता है। काळबेलिया, भील, बाहती प्रायः इसे बजाते हैं। थाली के समान ही कटोरा भी काम आता है। इसको गोगाजी के भोपे ढाक के साथ बजाते हैं। कटोरा (कचोला) रेगिस्तानी भागों में देखा जाता है।

झाँझ : एक छोटे मंजीरे की बड़ी अनुकृति है। इसकी लंबाई चौड़ाई एक फुट के लगभग होती है। झाँझ प्रयोग अधिकतर ताशे के साथ होता है। यह उत्तेजित करने वाला वाद्य है। इसकी आवाज दिल को फड़काने वाली है। कच्छी घोड़ी नृत्य (शेखावाटी) तथा बाजे के साथ भी इसका प्रयोग होता है।

पत्थर : निश्चय ही यह निर्धनो और कंगालो का साज है और उपयुक्त साज सामान के अभावों में पत्थर से ही ताल वाद्य का काम लिया जाने लगा। यह वाद्य विशेषकर भिखमंगो तथा साधु फकीरों के हाथ की शोभा है। दो छोटे छोटे पतले और चपटे पत्थरों को ऊँगलियों में दबाकर दूसरे हाथ से उनसे ताल निकली जाती है। खड़ताल मंजीरे की तरह एक ही ताल इनसे निरंतर बजती रहती है। पत्थर बजाने में निपुण अंधे साधु और भिखमंगे होते हैं। इनकी ऊँगलियों में गजब की करामात होती है और इकतारे के साथ पत्थर की धुन मिला कर ये अद्वितीय प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

खड़ताल : करताल से यह शब्द बना है जिसका मतलब है हाथ की ताल। सामूहिक गान के साथ ताल को सर्वाधिक जनश्रुत बनाने के लिए ही खड़ताल की उत्पत्ति की गई है, ऐसा प्रतीत होता है। यह लोकवाद्य अतिप्रचलित है। यह लगातार एक ही लय की ताल देने में प्रयुक्त होता है। यह साधु संतो का, भक्तजनों का वाद्य है। यह मधुर वाद्य नहीं है। इसके साथ पीतल की जो गोल गोल कटी हुई छोटी छोटी तश्तरियाँ होती हैं उनकी झनकार इसे मधुर बना देती है। खडताल और इकतारे का मेल है। भक्ति गीतो के साथ ही खड़ताल वादन की परंपरा चल पड़ी है।

****

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

गुजरात के लोक वाद्य

गुजरात के लोगों ने स्वयं के हृदय के भावावेषानुसार स्वान्तसुखाय ही लोकसंगीत की रचना की। यह लोकसंगीत शास्त्रोक्त नियमों से पूर्णरुपेण परे है। लोकसंगीत के लिए किसी स्वरसाधना या रियाझ की जरुरत नहीं है। इसके शब्द व स्वर अत्यंत सरल एवं आडंबरहीन होते है। इसे कोई भी सामान्य जन गा सकता है इसी कारण यह लोकहृदय को अनायास ही छू लेता है। जब तक लोकजीवन है तब तक यह जीवित है। लोकगीत, लोकसंगीत और लोकवाद्यों का अनोखा संगम है। इनकातो चोली दामन का साथ है। गुजरात में मुख्यतया सौराष्ट्र में आज भी लोकगीत संगीत व वाद्य की महफिल जब भी जमती है तो श्रोतागण आनंद की रसानुभूति में लीन हो जाते है। इन तीनों के संगम का असली परिचय यहीं देखने को मिलता है।

लोकगीत, संगीत के अनुरुप ही उसके वाद्य होते हैं। वाद्य अर्थात् जो साधन बन सके वह। या जिसके द्वारा निश्चित श्रुति और स्वर प्राप्त किया जा सके ऐसा यंत्ररुप साधन। लोकगीतों में जो वाद्य प्राचीन काल में बजाये जाते हैं वह आज भी उसी रुप में विद्यमान है।

गुजरात के लोकवाद्यों को भी हम इस प्रकार विभक्त कर सकते हैं-

(१) तंतुवाद्य (तारवाद्य)
(२) सुशिरवाद्य (फूँक वाद्य)
(३) धनवाद्य (तालवाद्य)
(४) आनद्ध वाद्य (खाल वाद्य)

अब हम इनमें आनेवाले विविध वाद्यों का स्वतंत्र रुप से अध्ययन करेंगे।

(१) तंतु वाद्य – (तार वाद्य) : जो वाद्य तार से बजते हों उसे तंतुवाद्य कहा जाता है। गुजरात के लोकवाद्यों में तंतुवाद्य का मुख्य स्थान है। इसके अंतर्गत रावणहथ्था, अेकतारा, जंतर और गुजरातण सारंगी आते है। पर प्रमुख है रावणहत्था और गुजरातण सारंगी।

रावणहत्था : यह गुजरात और राजस्थान का प्रमुख लोकवाद्य है। डॉ. हरिवल्लभ भायाणी के अनुसार रावणहस्त का उद्भव भगवान शिवजी को प्रसन्न करने के लिए रावण ने स्वयं की अंतड़ियों को खींच कर जो वाद्य बनाया व बजाया से किया जाता है। गुजरात में गज से बजनेवाले लोक वाद्यों में रावणहत्था ही एकमात्र वाद्य है। यह प्राचीन काल का पुराना सीधासादा वाद्य है। दो फुट की खाली (रिक्त) बांस की डंडी पर दो तार या महीन तांत बांध दी जाती है। नीचे के हिस्से में काचली पर चमडा मँढ़ दिया जाता है और घोड़े के बाल से बने गज से इसे बजाया जाता है। घुमक्कड़ साधु, वैरागी बाबा, आदि लोकगीत और भजन गाने में इसका उपयोग करते हैं। इसके अलावा गुजरात में रावणहत्था मुख्यरुप से भरथरीओं का वाद्य है। जो विशेषतः शौर्य की गाथाएँ, कथागीत, भजन आदि गाते हैं। यह व्यवसायिक लोकगायक है। रावणहत्थे के लिए डोंडी, जंतर, जंतरी अेकतारी, तुंबी ऐसे पर्यायवाची नामों का प्रयोग करते हैं। भरथरी कौम शक्तिपूजक है। यह नाथपंथी शाक्त हैं।

अेकतारा : विशेष तौर पर भजन में इस्तेमाल किए जाने धातु के तार होते हैं और नीचे मध्यम कद का ऊपरी हिस्से में चमड़े से मढा हुआ तंबुडा होता है। ऊंगलियों से तार को छेड़ बजाया जाता है। भजन करनेवाले तथा साधु इसका प्रयोग करते हैं। इसे तंबूरा भी कहते हैं। इसका स्वर ध्वनि रसोद्रेक करने वाले होते हैं। कर्णप्रिय होता है। इकतारे के ताल पर गायक तन्मय बनकर जब राग आलापता है तब श्रोतागण आफरीन हो जाते हैं।

जंतर : श्री हरकांत शुक्लजी के अनुसार जंतर जो है रुद्र वीणा का प्राचीन और प्राकृत स्वरुप है। जंतर लंबे बांस की लकडी के ऊपर नीचले हिस्से में तूंबडे से मढ़ा हुआ वांजित्र है। उस पर मुख्य दो तार होते हैं और दूसरे दो नीचे निकालने के लिए रखे-जाते हैं जिसे नखली (बिछिया पांव की) से बजाया जाता है। इसमें रुद्र वीणा की तरह इसपर मोम से चिपकाए परदे भी होते हैं। गुजराती लोकसाहित्य में विशेषकर शेणी विजाणंद की लोककथा में जंतरवाले जवान (युवक) की प्रीतकथा का वर्णन है। आज गुजरात के तंतुवाद्यों में यह एक अत्यंत प्राचीन गिना जाए ऐसा वाद्य है। इसके बजाने वाले भी मर्यादित व्यक्ति हैं। जो मुख्यरुप साधुगण सौराष्ट्र में दिखाई पड़ते हैं।

सुरींदा (सारंगी) : सारंगी वर्ग का अत्यंत प्राचीन यह लोकवाद्य गुजरात में विशेषरुप से कच्छ में दिखाई पडता है। आज भी इसका एकमात्र उत्तम वादक कच्छ में है। तंतुवाद्यों में सारंगी सबसे विशिष्ट वाद्य है। यह स्वतंत्र तंतुवाद्य है। इसकी बनावट तथा बजाने का तरीका एकतारा जैसा ही है परंतु इस पर तार ज्यादा होते हैं और गज (हत्था) पर भी ज्यादा तंतु खींचे हुए होते हैं। इसे बजानेवाले को सारंगिया कहते हैं।

केन्द्रु : दोनो किनारों पर तुम्बे, बीच में डंडा और उसपर तार। बागड़ के वाद्यों में केन्द्रु कहते हैं। जोगी जाति के लोग केन्द्रु के ताल पर गीत, भजन तथा शौर्य काव्य गाकर अपनी आजीविका चलाते है। सरपर केसरिया रंग की पगडी, कंधे पर मांगकर खाने रखने का झोला और हाथों में केन्द्रु तथा मंजीरा यह जोगी का रुप। गाँव गॉव घर घर फिरता जाता, केन्द्रु के ताल पर गीत गाता समाचारों का आदान प्रदान करता जोगी लोक में मनोरंजन प्रदान करने वाला लोकजीव है।

तम्बूडा (तम्बूरा) : उपर वर्णित वाद्य में दो तुम्बे होते हैं जबकि इसमें नीचे एक बड़ा गोल तुम्बु होता है, डंडा लंबा होता है और ऊपरी छोर पर कील पर तंतु की चाबियां होती हैं जिसके तार खींचे (कड़क) जा सकते है। यह अत्यंत पुराना लोकवाद्य है। जो भगत होता है उसके पास अवश्य होता है। इसी के ताल पर भजन की रमझट होती है। डायरे जमाए जाते हैं, प्रभु का गुणगान करते हैं।

(२) सुशिर वाद्य (फूँक वाद्य) : गुजरात के लोकसंगीत और खासकर लोकनृत्य में तार वाद्य की अपेक्षा सुशिरवाद्य महत्वपूर्ण स्थान रखते है। इसमें प्रमुख है बंसी और शहनाई अन्य भी है। दोनों वाद्य धर्मश्रद्धा से जुडे हैं। बंसी भगवान श्रीकृष्ण को वाद्य है और शहनाई मांगलिक अवसरों पर बजाया जानेवाला वाद्य है।

बंसी (वांसळी) : यह वांसळी, बंसी, वेणु, बंसरी, मुरली ऐसे विविध नामों से जानी जाती है। यह मुख्यतः बाँस में से बनाया जाता है। इसमें ६ या उससे कम ज्यादा छिद्र होते हैं। छिद्र के कारण बंसी में फूँकी जानेवाली हवा के अंदरुनी स्तंभ में बढत-घटत होती है जिसके आधार पर स्वर ऊंचा या नीचा लाया जा सकता है। बंसी खडी व आडी (टेढी) दोनों प्रकार की होती है। आधुनिक बंसी धातु की भी होती है।

बाँस के छिद्र द्वारा बनाया जाने वाला यह लोकवाद्य रसीला व सुरीला होता है। बंसी साक्षात प्रेम और आनंद का प्रतीक है। श्रीकृष्ण बंसी के सुर पर राधा वारी जाती थी। बंसी स्वर संगीत को निनादित कर तन मन को डोलाने वाला बेनमून लोकवाद्य है।

(अजगोला) पावो : बंसी की तुलना में मोटा और छोटे कद के बाँस के टुकड़े में से तीन चार छिद्र करके उपयोग में लाये जाने वाले वाद्य को पावा कहते है। पावा वांसळी वर्ग के विविध वाद्यों में शुद्ध ऐसा लोकवाद्य है जिसका उपयोग मर्यादित सुरावली तक ही हो सकता है। पावे की वर्ण और प्रकार में वैविध्य है। जुड़वा पावे में दोनों पावों में मुँह द्वारा एकसाथ फूँक मारी जाती है। ·इसके स्वर से श्रोतागण मंत्रमुग्ध रह जाते हैं। लोक जीवन में यह लोकवाद्य प्रेम का पवित्र बाण समान है।

मोरली : मोरली दो खाली भूंगलियों की बनी होती है। एक साथ दो तीन संवादी स्वर बजाए जा सकते हैं। इन स्वरों का संवाद इतना असरकारक होता है कि इसके आवाज से सर्प को भी वश में किया जा सकता है ऐसी मान्यता है। इसे बीन या पुंगी भी कहते हैं। मोरली विदेशी बेग पाइप जैसा स्थान रखती है। दक्षिण में इसे पुंगी कहते हैं। पुंगी या बीन के ताल पर नाग डोलने लगता है। कंजर जाति के लोग विविध स्वरों में पुंगी बजाते हैं और भयंकर से भयंकर विषधर सर्प को आसानी से पकड़ सकते है।

भूंगळ : भूंगळ पीतल की लंबी भूंगली की बनी होती है और उसका मुँह से फूँक मारने वाला भाग संकरा और नीचले छोर का भाग शहनाई की तरह गोल होता है। भूंगळ और भवाई भारत में प्रसिद्ध शब्दयुग्म है। गुजरात के वागड प्रदेश में भांड, भवईये, भगत इत्यादि भूंगळ वाद्य का उपयोग करते हैं। इसमें भी फूँक से स्वर उत्पन्न किए जाते हैं। भवाई में भूंगळ अनिवार्य है। जिसमें फूँक मारने से एक प्रकार से कर्कश आवाज निकलती है।

असली प्राचीन जमाने में इसे सींग से बनाया जाता था जिसे आज रणशिंगु कहा जाता है।

शहनाई : शहनाई वादन भारत में प्राचीन काल से लोकप्रिय है। देव द्वारे और राज दरवाजे नगाड़े के साथ शहनाई के सुर सदा गूंजते रहते है। भारतीय लोकसंगीत का यह बहु प्रचलित और मांगलिक माना जाने वाला सुशिर वाद्य है। इसे पिपुडी के नाम से भी जाना जाता है, जो विविध प्रकार की होती है। मीठे मधुर स्वर वाली शहनाई जब गूंजती है तो हृदयके तार झनझना उठते है। वागड़ी बोली में इसे हणणेईवाजुं कहते है।

एक प्रसिद्ध लोकपंक्ति-

हणणेईवाजुं वाजे के नोबत वाजे, नोबत वाजे इंदरगढ गाजे-

शंख : शंख भी अत्यंत प्राचीन गिना जाने वाला वाद्य है। अभी तो मंदिरो में आरती के वक्त इसे बजाया जाता है परंतु प्राचीन जमाने में शंख और भेरी युद्ध वाजित्र गिने जाते। श्रीकृष्ण का पंचजन्य शंख पुराणों में प्रसिद्ध है। फूँक मारकर ध्वनि उत्पन्न हो ऐसे प्राचीन वाद्यों में शंख विशिष्ट वाद्य है।

साधु वैरागी-भैरव आदि के लिए खास कर जमात में शंख अग्रण्य वाद्य है। इसकी महिमा महाभारत काल से चली आ रही है। शंख ध्वनि समय सूचक भी है। आज भी गुजरात के गाँवो के मंदिरों में शंख बजाने की परंपरा है।

ताल वाद्यः इसके दो प्रकार हैं :

(1) अवनध्ध वाद्य (खाल) (2) धन वाद्य (ताल के लिए स्वर वाद्य)

तालवाद्यों के दो प्रकार है। एक तो अवनद्ध वाद्य दूजे धनवाद्य। अवनध्ध वाद्य अर्थात् जो चमडे खाल से मँढे हुए वाद्य जिसमें मृदंगा, तबला, ढोलक, ढोलकी, खंजरी, नगाड़ा, डमरु आदि आते हैं। धनवाद्य अर्थात् लकडी की पट्टी या धातुओं को टकराकर ध्वनि निष्पन्न की जाती है। जिसमें झांझ, करताल, मंजीरा, घंटा आदि आते है। गुजरात के लोकसंगीत के धनवाद्यों में मुख्य ढोल,डमरु, तबला, नगारा, त्रांसा, घट-माण, खंजरी डफ-डबलुं इत्यादि है।

(।) अवनध्ध या आनद्ध वाद्य- (चर्म वाद्य)

ढोल : लोक संगीत और लोकनृत्य में जबरदस्त ताल उसका महत्वपूर्ण अंग होने की वजह से आनद्ध वाद्य गुजरात के लोक में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। केवल गुजरात में बल्कि सारे हिन्दुस्तान में इस वाद्य का अस्तित्व है। यह विवाह जैसे अवसर पर बजाया जानेवाला मंगल वाद्य है। ढोल को गोल अंदर से खाली ऐसे लकडे का बना होता है जिसके दोनो मुँह चमड़े से मँढ़ लिए जाते है। जिसने एक ओर ऊँचे स्वर का चमडा जो हाथ से बजता है जबकि मंद स्वर की तरफ लकड़ी की डंडी से बजाया जाता है। ढोल में से अनेक प्रकार के ताल बजते है परंतु मुख्यतः हिंचाहिंच, धमाल, हमची आदि मिलते है। पुराने जमाने में लड़ाई में शौर्य बढ़ाने के लिए विशेष प्रकार का ढोल जिसे सिंधूडा कहते है बाजाया जाता था। उसी तरह देवी देवताओं का भार लाने, जाग देने के लिए भी ढोल बजाए जाते हैं। ढोल की ताल पर शौर्य (वीर) भयानक तथा रौद्ररस छेडे जाते हैं।

ढोलकी : यह ढोल वर्ग की ही होती है। नट नाडी के खेल करता है तब ढोलकी बजाता है। कई बार बारात में त्रांसा के साथ ढोलकी भी होती है।

ढोलक : ढोल ढोलकी के वर्ग में आनेवाली ढोलक रुप तथा बनावट में जरा नाजुक होती है। इसकी यती मती, ताल और लय साहित्यिक कविता तरह भाव और माधुर्य की द्रष्टि से कर्णप्रिय होती है। खास कर नगारची जाति की स्त्रियाँ जब ढोलक के संग अपनी कोयलं-से कंठ की मधुर धुन छेड़ती है तब समा बँध जाता है।

कुंडी : ढोल के साथ कुंडी का ताल प्रसिद्ध है। राजस्थान में भी होली पर ढोल कुंडी का संगम देखने को मिलता है। इसका स्वर तेज, प्रखर के साथ सुरीला भी होता है। गीत पंक्ति-

ढोल कुंडी लावो, घेरैया ने बोलावो,
होळी आवी भई, घैर रमती आवी।

घैरेया (जाति) होली नृत्य बडे उमंग से ढोल कुंडी के संग मनाते है। इनके पांव में घुंघरु बँधे होते है, पगडी का फूमता (लटकन) झूमते हुए जब नृत्य करते है इसमें गुजरात के लोकजीवन की झाँकी मिलती है। लोकजीवन को जीवंतता दिखती है।

डमरू : यह अत्यंत प्राचीन वाद्य है। इसे भगवान शिव के साथ जोडा जाता है। यह डुगडुगी के रुप में भी विख्यात है। इस वाद्य के दोनो छोर चौडे बीच का भाग संकरा होता है जिसके दोनो और चमड़ा मँढ लिया जाता है। इसके मध्य में डोरियाँ बँधी होती है जिसके छोर पर गाँठे होती है। डुगडुगी अधिकतर मदारी इस्तेमाल करते है। साथ ही जोगी, साधु, भैरव, अघोरी (तांत्रिक) उस वाद्य का उपयोग करते है। डमरुं में ओज गुण की प्रधानता है।

(नरघां) तबला : तबला मृदंग के दो भाग को अलग करके अमीर खुसरो ने विकसित किया हुआ तालवाद्य माना जाता है परंतु खास कर भजन, गरबे में इसका उपयोग होने के कारण लोकवाद्य के रुप में प्रचलन में है। यह मृदंग के विभाजित अंग है। इसमें उच्च कोटि का बड़ा तबला ऊँचा सुर देता है जबकि छोटा तबला जिसे खातुं कहते हैं वह कुंद स्वर के लिए होता है। इसे नरघां भी कहा जाता है। नर्तकी का नाच तबले की थाप बिना गति में आएगा ही नहीं। गजल, ठुमरी, दादरा, गीत, नाच, कव्वाली या भजन मृदंग बिना चले ही नहीं।

नगारुं (नगाड़ा) : नगारा अर्ध वृत्ताकार को ऊपरी वृत्ताकार सतह से चमड़े से मँढकर दांडी से बजाया जानेवाला वाद्य है। इसका उपयोग शहनाई के साथ और देव मंदिर की आरती में किया जाता है। पुराने जमाने में राजा के महलों में नगारखाने होते थे। जहाँ प्रतिदिन सुबह शाम शहनाई और नगारे के साथ संगीत बजता। यह आदिकाल से उपयोग में लाया जानेवाला लोकवाद्य है। तांबे की गागर पर चर्म से मँढ़े हुए छोटे बड़े कद के नगारे लोक में अति व्यापक वाद्य है। विजया दशमी के समयं स्तंभ पूजन तथा अन्य विधि के अवसर पर नगारा महत्वपूर्ण स्थान रखता है। धूलेंडी के अवसर पर गुजरात में घेरैया लोग लोकनृत्य करते है तब ढोल दुंडी और नगारे के त्रिवेणी संगम पर झूमते है तभी असली लोकजीवन का परिचय मिलता है। तथा लोकवाद्य की विशिष्टता दिख पडती है।

त्रांसु (त्रांसां) : तगारां या तगारी पर चर्ममंडित वाद्य बांस दो की पतली लकडी की सहायता से मनोहर स्वर छेडने वाला सुगम वाद्य है। जो शादी ब्याह के अवसरों पर अवश्यक बजाया जाता है। नगारे की नीचली सतह छीछरी हो तो वह तीक्ष्म स्वर देता है उसे त्रांसा कहते है। किसी भी सभा जुलुस में वादक गले में त्रांसा लटका कर बजाता है। यह ढोल का पूरक वाद्य है।

खंजरी– (खंजडि) : वृत्ताकार चौडी पट्टी की एक तरह चर्म, मढ़कर उसकी पट्टियों में खनकने वाली छोटी गोल कोडी (झाँझ) रखी हो, जो पीतल या लोहे की हो उस पर हाथ से चमडे की सतह पर प्रहार करने से ध्वनि उत्पन्न होती है इसे खंजरी कहते हैं। लोकगीत, भजन आदि में इस वाद्य का उपयोग किया जाता है।

डफ : खंजरी से बडे वृत्ताकार को एक ओर से मढकर बजाया जाता है उसे डफ कहते हैं। होली के दिनो में डफ या डफली का उपयोग किया जाता है। यह मूलत राजस्थान का वाद्य है। इसी कारण गुजरात में बसनेवाले राजस्थानी इसका उपयोग करते हैं। डफ खंजरी का बडा स्वरुप है जिसमें झांझ नहीं होते। डफ बजानेवाले इसे सांग भी कहते हैं जो लोकवाद्यों में सबसे निराला चर्मवाद्य है। यह लोक हृदय में उमंग की लहर भर देता है। जीवन में बसंत बहार आ जातीहै। होली के अवसर पर सांग बजा युवक फागणिया गाकर सबको मोहित कर देते हैं।

घट वाद्य (मटका) : घट वाद्य गुजरात का अत्यंत प्राचीन और प्रचलित वाद्य है। घट वाद्य अर्थात् घड़ा या मटका जिसका मुख चमडे से बॉधकर उसको बाजु में थाप लगाने से तबलां जैसा आवाज निकलता है। गुजरात में घट वाद्य विशेषकर कथाकार जो माणभट्ट कहलाते है वह गली–कूंचों में कथा कहते उसका प्रयोग करते हैं। गुजरात का घट वाद्य तांबे या पीतल की बनी गागर (गोळी) होती है जो हाथ की उंगलियों में अंगूठी पहन कथा कहते हुए बजाया जाता है।

रागपेटी (हारमोनियम) : यह वाद्य आधुनिक होने के साथ लोकवाद्यों के अंतर्गत भी आता है। गाने पर गुजारा करने वाले लोगों के लिए यह वरदान स्वरुप वाद्य है। जब सुरीला स्वर रागपेटी के सुर के साथ अेकराग से गाया जाता है और भजन पद या लोकगीत का राग आलापा जाता है तब श्रोतागण श्रवणमुग्ध बन जाते हैं।

मादळ : यह गुजरात के वागड प्रदेश का विशिष्ट वाद्य है। लोकगीत की पंक्ति है – मादक करे रे रणकाट। बीच से उभरा हुआ गोल भाग और दोनो किनारों से संकरा चर्ममंडित छोटी पखवाज जैसा यह वाद्य आदिवासी द्वारा प्रयोग में लाया जाता है। इसकी रणकार मधुर, सुरीली पतली व तीखी होती है। यह कर्णप्रिय वाद्य है। आदिवासियों को एक जगह एकत्रित करने के लिए संकेत रुप में भी इस वाद्य का प्रयोग किया जाता है।

(II) घन वाद्य (ताल वाद्य) :

मंजीरा : गुजरात के लोकसंगीत में खासकर / विशेषरुप से भजन में मंजीरा तालबद्धता के लिए आवश्यक है। मंजीरा अनेक तरह से बजाया जाता है। मंजीरे बजानेवाले निष्णात / निपुण तो शरीर के अनेक भागों पर मंजीरे बॉध उसका कई गुना कलात्मक उपयोग कर सकते हैं। मंजीरे काँस के बने होते हैं। मृदंग के साथ मंजीरे का ताल जरुरी है। भजन कीर्तन में मंजीरे के बिना चलेगा ही नहीं। यह महत्वपूर्ण लोकवाद्य है।

झांझ : लोकवाद्यों में इसका भी महत्वपूर्ण स्थान है। झाँझ पखवाज की जोड़ी मानी जाती है। झाँझ पीतल

के बने होते हैं। दो झांझ का आपस में टकराकर उसमें से एक प्रकार की तालबद्धता उत्पन्न होती है। आसाम में जर्मन सिल्वर के झांझ बजाने का रिवाज है। परंतु गुजरात में जिस झांझ का प्रयोग होता है उसका कद तीन या चार ईच की चौड़ाई से ज्यादा नहीं होता और विशेषकार चलती में (steps) झांझ और मंजीरा को झनकार लोकसंगीत में अनोखी लयकार उत्पन्न करते हैं।

करताल : सूरदास से नरसिंह महेता या मीरां से मावजी महाराज कोई भी संत हो हाथ में करताल अवश्य होती ही थी। करताल और मंजीरे की जोड़ी में भक्त भगवान को भजता है, तब मानव मन डोल उठता है। रात्रि को गुजरात में जो डायरा कार्यक्रम (लोकसंगीत का कार्यक्रम) आयोजित होता है उसमें करताल और मंजीरे की जोड़ भक्त श्रोतागण के हृदय को झूमता कर देते है और रात का समां बंध जाता है। सामान्य मानव के लिए भक्ति का प्रेममार्ग उत्तम कहा जाता है और इस प्रेमलक्षणा भक्ति के साधन लोकवाद्य करताल व मंजीरा सर्वाधिक उपयुक्त है। गली कूचों में संगीतमय भजन गानेवाले साधु और कथाकार भी इसका उपयोग करते है। करताल अर्थात् लकडी का बना हुआ दो पट्टियों जैसा वाजित्र होता है ताकि दो लकडियों के टकराने से झांझ टकराने से सुंदर झनकर और तालबद्धता उत्पन्न होती है। कीर्तनकार के अलावा लोकनृत्य मंडली गरबी में भी इसका उपयोग करती है।

चकरडी : यह दो लकडियों के उभरे वृत्ताकर छोटे टुकडे होते हैं जिसके किनारे छोटे घुंघरु बाँधे जाते है। बाँए हाथ की बीच की दो अंगुलियों के बीच में दो चकरियों को रखकर दाँए हाथ से बजाया जाता है। यह वाद्य अत्यंत छोटा और सादा होने के कारण उसमें से जो तालबद्धता उत्पन्न होती है उसे सुनकर श्रोता मुग्ध हो जाते हैं।

छप्पर : मंजीरा छोटे होते हैं जबकि इसी वर्ग के छप्पर बड़े व पतले लोहे (पतरे) के होते हैं। बीच में पकड़ने के लिए झूमका (फूमता) होता है। झन झन...झननननना चप्पर ध्वनि राग में थिरक भरते हैं, स्वर में माधुर्य भरते है तथा संगीत में गति व प्राण भर देते है। ढोल-त्रांसा के साथ छप्पर की संगत होती है। गुजरात में इसे कांसिजोडां या कोसिंदडां भी कहते है।

गुजरात के लोकसंगीत में आनध्ध, तंतु, धन और सुषिर वाद्य के जो भी प्रकार है वह आज भी अपने प्राचीन स्वरुप में मिलते हैं। परंतु इसके बजानेवाले गिनती में कम होते जा रहे है। यह लोकसाद्य, उसे बजाने का तरीका व उसका उपयोग समाप्ती की सीमा पर है अतः हमें चाहिए कि अपने इस लोकवैभव को बचाए रखने का प्रयास भरसक रुप से करें। तभी हमारी लोक संस्कृति जीवंत रह पाएगी और आनेवाली पीढ़ियाँ उसे मूल रुप में देख पाएँगी।

* * * * *

---

1. गुजराती लोकसाहित्य : डॉ. हसु याज्ञिक, पृ. 419-443
2. लोकगुर्जरी वार्षिक अंक 4था (गुजरातनां लोकवाद्यो) : श्री हरकांत शुक्ल, पृ. 4-10
3. लोकवाद्यो : डॉ. एल. डी. जोशी
4 लोकगुर्जरी वार्षिक अंक 5वॉ (1968), सातवाँ (1974)
5 लोकगुर्जरी वार्षिक अक
6. गुजराती साहित्यनो इतिहास : ले. रतिलाल सां. नायक, सोमाभाई वी. पटेल, दमयंती र. शुक्ल